पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
प्रवचन LA ३४३
समयसार गाथा ३७३-३८, उत्तम आर्जव धर्म
दिनांक: १५-९-१९९१ जामनगर मंदिर, गुजरात

आज पर्युषण पर्वाधिराज मांगलिक दिवस का उत्तम आर्जव धर्म का दिन है। **आज दसलक्षण पर्व का तीसरा दिवस है; आज 'उत्तम आर्जव धर्म' का दिवस कहलाता है। उत्तम आर्जव अर्थात् सम्यग्दर्शन पूर्वक की वीतरागी सरलता।** श्रीमद्जी ने भी कहा है मध्यस्थता, कषाय की मंदता, सरलता, जितेंद्रियपना, उसमें जो सरलता कही है, वह यह सरलता है। सामान्य सरलता तो अनंतबार जीव को आयी है, स्वर्ग में गया। एकबार यदि यह सम्यग्दर्शन पूर्वक की सरलता आये तो चारित्र अंगीकार हो जाता है, आहाहा! वीतरागी सरलता!

आत्मा के ज्ञायक स्वरूप में कपट का भाव ही उत्पन्न न होने देना। उपदेश बोध में तो ऐसा ही आता है न? वरना उत्पन्न होना ही न हो तब उसका काल उत्पन्न होता ही नहीं। होने योग्य होता है लेकिन उपदेश के बोध में ऐसा कहा जाता है। **कपट का भाव ही उत्पन्न होने न देना वह उत्तम सरलता है। आत्मा ज्ञान-आनंद की मूर्ति, क्रोध-मान- माया-लोभ रहित है।** तीनों काल रहित है, है तब रहित है। पर्याय में जब क्रोध होता है उस समय भी जीव तत्व आस्रव से सर्वथा भिन्न है।

उसको , जैसा है ऐसा समझना और श्रद्धा में वक्रता नहीं करनी, विपरीतता नहीं करनी, टेढ़ापन नहीं करना। **वह सम्यग्दर्शनरूप सरलता है। और चैतन्य स्वरूप को जैसा है वैसा न मानकर, स्वरूप की विपरीतता करके पुण्य-पापवाला मानना।** आत्मा पुण्य-पापवाला नहीं है, फिर भी मानना वह उसका टेढापन है, अज्ञानता है। ऐसा आत्मा का स्वरूप नहीं है। अज्ञानी मानते हैं ऐसा आत्मा का स्वरूप नहीं है। सर्वज्ञ भगवान केवलज्ञान में जानते हैं ऐसा आत्मा का स्वरूप है, और संत अनुभवते हैं ऐसा आत्मा का स्वरूप है। प्रफुल्लभाई वहाँ क्यों बैठे हो ? यहाँ पर आओ। आगे आओ। आचार्य भगवान कहते हैं आओ-आओ यहाँ पर। यहां जगह है, आओ।

क्या कहते हैं? संत क्या कहते हैं? कि कपट के भाव को छोड़ दे। कपट अर्थात् क्या? कि आत्मा शुभाशुभ भाव से रहित है। पुण्य-पाप से रहित है। फिर भी मानता है कि मेरा आत्मा पुण्यशाली है। वह कपट के खेल हैं सब। पुण्य और पुण्य के फल आत्मा में नहीं हैं। त्रंबकभाई हंसते हैं। ज्ञानियों को कहाँ कोई दान लेना है किसी के पास से ? नग्न दिगंबर मुनि! हें? आहाहा! नागा बादशाह से भी दूर, ऐसी कहावत है न? आहाहा! कहते हैं कि यह कुल-कपट के भाव छोड़ दे।

मैं कर्मवाला हूँ और मैं फैक्टरी वाला हूँ और मैं बड़ी जमीनवाला हूँ और मैं मिलवाला हूँ। आहाहा! गुरुदेव कहते थे कि कितने वाला है? एक वाल निकलता है तो दुःख का पार नहीं होता। पुराने समय में वाल बहुत निकलते थे। अब कितने वाला ? यह वाला, यह वाला, यह वाला, यह वाला, आहाहा! रहने दे न? कुल-कपट के खेल छोड़ दे ! मैं तो ज्ञानमय आत्मा हूँ। आहाहा! मेरे में पुण्य-पाप

के भाव नहीं हैं। पुण्य-पाप से भिन्न है मेरा आत्मा, अनादि अनंत। मैं तो ज्ञानानंद आत्मा हूँ। ऐसा ले ले न? कपट के खेल करके चारगति में दुःखी हो जायेगा।

इसप्रकार न मानकर स्वरूप की तिरछाई करके पुण्य-पापवाला मानना। पुण्य-पाप भले हो, लेकिन उस वाला मैं हूँ ऐसा नहीं है, उससे रहित हूँ मैं- ऐसा मानना। ज्ञान से सहित और पुण्य से रहित हूँ, ऐसा जान और मान न! आहाहा! **पुण्य-पापवाला मानना वह अनंत कपट है।** विशेषण लगाया है कपट के आगे। ये कपट के खेल ही किये हैं अनंतकाल से, आहाहा! उन माया कपट के खेलों से उसे तिर्यंच पर्याय आती है, आहाहा! कोई पर के संग से या पुण्य परिणाम से आत्मा का लाभ मानना वह वक्रता है, तिरछापन है। अनार्यता है, अनार्यपना है। तो यह भरतक्षेत्र तो आर्यों की भूमि है। आर्यों की सच्ची भूमि है, लेकिन पुण्यवाला मानता है तो वह अनार्य है जीव, आर्य नहीं है। आहाहा! सरलता नहीं है, वीतरागी सरलता नहीं है।

सामान्य सरलता हो वह पुण्यबंध का कारण होती है, यह वीतरागी सरलता मोक्ष का कारण है। यहाँ तो मोक्ष होने की बात चलती है। पुण्य हो और स्वर्ग में जाए, वह बात यहाँ नहीं है। वह दुकान दूसरी है, और यह दुकान दूसरी है। यह तो वीतराग की गद्दी है। **वह अनंत कपट है। किसी पर के संग से या पुण्य परिणाम से आत्मा का लाभ मानना वह वक्रता है**, **अनार्यता है। आर्य अर्थात् सरल, जैसा सहज ज्ञायकमूर्ति आत्मस्वरूप है वैसा ही** जानना और **मानना, जरा भी विपरीत न मानना वह सरलता है।** सरलता की व्याख्या भी अलग ही है। अज्ञानी सरलता की व्याख्या करते हैं वह अलग और ज्ञानी की (सरलता की) व्याख्या अलग होती है।

और चैतन्य स्वरूप की समझ में तिरछापना करके किसी विकल्प या व्यवहार के आश्रय से लाभ मानना वह अनार्यपना है। शुभभाव से धर्म मानना वह अनार्यपना है, आहाहा! तो-तो सारे व्यवहार का लोप हो जायेगा। व्यवहार का लोप तो करने जैसा ही है। तू परमात्मा हो जायेगा! आहाहा! व्यवहार के लोप से स्वच्छंदी नहीं होगा। जहाँ दृष्टि में आत्मा लिया और वीतरागी सरलता प्रगटी, वहाँ तो अल्पकाल में उसको मोक्ष की पर्याय प्रगट होती है। पहले सम्यग्दर्शन। **चैतन्य स्वरूप की समझ में तिरछापना करके कोई विकल्प या व्यवहार के आश्रय से लाभ मानना वह अनार्यता है।**

व्यवहार रत्नत्रय भी रागरूप है। व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम साधक को ही होते हैं। मिथ्यादृष्टि को व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम तो होते ही नहीं। लेकिन साधक के व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम भी बंध के कारण हैं। निश्चय रत्नत्रय के परिणाम मोक्ष के कारण हैं। निश्चय रत्नत्रय के परिणाम आत्माश्रित है और व्यवहार रत्नत्रय पराश्रित है। आत्माश्रित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम जो अभेद होते हैं वह निश्चय मोक्ष का मार्ग है। लेकिन केवलज्ञान पूरा न हो, तब तक बीच में, इस प्रकार के बाधक तत्व, व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम, आते हैं। शास्त्र का ज्ञान, देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान, नवतत्व का श्रद्धान, ऐसे सभी भाव-शुभभाव आते हैं लेकिन वे बंध के कारण हैं। वे मोक्ष का कारण नहीं हैं। साधक को भी (मोक्ष का कारण) नहीं है। आहाहा!

व्यवहार रत्नत्रय भी राग है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है, प्रभु! आहाहा! **आत्मा का ज्ञायक स्वरूप,** जीवतत्व का स्वरूप **पुण्य-पाप रहित है।** सहित मानता है वह अनादि के कपट के

खेल हैं सब। **व्यवहार रत्नत्रयरूप पराश्रित भाव से उसको लाभ मानना वह अनंत कपट का सेवन है।** वह कपट का सेवन करता है। व्यवहार रत्नत्रय के भाव हों , वह अलग बात है लेकिन उससे मोक्षमार्ग मानना, उससे मोक्ष मानना वह ही मिथ्यात्व है। व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम का अस्तित्व वह मिथ्यात्व का कारण नहीं है, वे तो साधक को होते हैं, हेय बुद्धि से आते हैं। आहाहा! उनको इंद्रियज्ञान जानता है और आत्मा को आत्मा का ज्ञान जानता है, ऐसी कार्य स्थिति चालू रहती है।

व्यवहार रत्नत्रय रूप पराश्रित भाव से उसे लाभ मानना (सो अनंत कपट का सेवन है)। और उस व्यवहार का आश्रय छोड़कर, अर्थात् राग का लक्ष्य छोड़कर, आश्रय छोड़कर अर्थात् लक्ष्य छोड़कर, **निश्चय शुद्ध ज्ञाता स्वभाव को जानना-मानना** जाननहार को जानना और जाननहार हूँ ऐसा मानना। जाननहार को जानना और जाने हुए का श्रद्धान करना कि जो जानने में आया वह ही मैं हूँ ऐसा प्रतीत में ले। **और उसमें स्थिर होना** उसका नाम चारित्र है। **सो उत्तम आर्जव धर्म है।**

स्वभाव की श्रद्धा और ज्ञान होने के पश्चात मुनिदशा में जो व्यवहार रत्नत्रय की वृत्ति उठती है वह राग है, आहाहा! पाँच महाव्रत के परिणाम बंध के कारण हैं। उदय के संग से ये औदायिक भाव होते हैं। वे संवर निर्जरा तत्व नहीं हैं। वे बंध तत्व हैं, वे आस्रव तत्व हैं। **वह उत्तम आर्जव धर्म नहीं है ,** व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम। **किंतु राग रहित होकर जितनी स्वरूप स्थिरता हुई उतना ही उत्तम आर्जव धर्म है।** वीतरागी परिणाम को धर्म कहने में आता है। राग धर्म नहीं है। साधक का व्यवहार धर्म कहा जाता है लेकिन निश्चय से साधक को भी वह अधर्म भाव है। स्वभाव से विरुद्ध भाव वह अधर्म कहने में आता है। स्वभाव के साथ नहीं मिलता हुआ भाव है राग, इसलिए धर्म नहीं है। स्वभाव से विरुद्ध है, इसलिए अधर्म है, धर्म नहीं है।

उत्तम आर्जव धर्म है। वास्तव में तो आत्मा के वीतराग भाव में ही एक वीतरागी पर्याय प्रगट होती है, उसमें **उत्तम क्षमादि दसों धर्म आ जाते हैं।** वह तो पूर्व पर्याय की अपेक्षा से उसके दस भेद हैं। नहीं तो वीतरागी पर्याय तो एक ही है, उसमें दसों धर्म समा जाते हैं। **आ जाते हैं, दसों धर्मों में वीतरागीभाव एक ही प्रकार का है।** वीतराग भाव का प्रकार एक ही है। **लेकिन वह वीतराग भाव होने से पूर्व** पूर्व पर्याय में **क्षमादि** शुभभाव था न? शुभभाव की क्षमा। **जिस प्रकार का विकल्प होता है उसी के अनुसार उत्तम क्षमादि नामों से उस वीतराग भाव को बतलाया जाता है।**

पूर्व में क्षमा का भाव था, उसका अभाव होकर वीतरागी पर्याय प्रगट हुई, तो उसको उत्तम क्षमा कहने में आता है। **और उस शुभ विकल्प को उपचार से उत्तम क्षमादि धर्म कहने में आता है। आचार्य देव उत्तम आर्जव धर्म का** इस प्रकार से **वर्णन करते हैं।** ये गुरुदेव के प्रवचन छप गये हैं दश लक्षण पर्व के ऊपर। बहुत अद्भुत हैं, आहाहा! इनकी प्रभावना भी करने जैसी है ऐसे व्याख्यान हैं दशलक्षण पर्व के।

अब, वह चारित्र दशा प्रगट होने की बात, मुनिराज की दस धर्म की बात की है। मुख्यरूप से तो वे दश लक्षण जो हैं, धर्म, वे मुनिराज की दशा की बातें हैं, चारित्र के भेद हैं। वह आ गया है कल। जघन्यपने तो, पंचम गुणस्थान और चौथे गुणस्थानवर्ती को भी आंशिक क्षमादि दश धर्म प्रगट हो गये

हैं। उनको वीतरागी दशा है पर्याय में। अनंतानुबंधी की कषाय, उसके अभावपूर्वक आंशिक स्थिरता, वीतरागी पर्याय है, तो उसमें दशों धर्म समाये हुये हैं, लेकिन जघन्य हैं। और श्रावक को मध्यम और मुनिराज को उत्कृष्ट धर्म होते हैं।

अब चारित्र का कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन बिना किसी भी काल में, किसी भी जीव को, चारित्र अर्थात् लीनता के परिणाम प्रगट नहीं होते। वह सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट हो? वह सम्यग्दर्शन प्रगट होने में अनादिकाल से जीव की दो भूलें हैं। अनादिकाल से जीव की दो ही भूलें हैं, दो ही। उन दो भूलों का विस्तार करो तो शास्त्र भर जायेंगे। लेकिन उनको समेटने में आये तो सम्यग्दर्शन नहीं होने का कारण दो भूल हैं। उसमें इन दस गाथाओं में, दूसरे नंबर की भूल के प्रवचन हैं। पहले नंबर की भूल कर्ता - कर्म अधिकार में बता चुके हैं।

दो भूल कौन सी? एक तो रागादि जो परिणाम होते हैं वे होने योग्य होते हैं। आत्मा करता है इसलिए होते हैं, ऐसा नहीं है। तब क्या आत्मा राग को नहीं करता? आत्मा ज्ञान को करता है या राग को करता है? आत्मा तो ज्ञान को करता हुआ परिणमता है अनादिकाल से। अपने को जाननेरूप परिणमता है, बाल गोपाल सभी को। तो उसको भूलकर, दृष्टि राग के ऊपर होने से, राग का प्रतिभास देखकर, मैं राग को करता हूँ, ऐसा अनादिकाल से अज्ञान दशा में अज्ञानी को राग का कर्तापना भासित हुआ है। फिर भी अकर्ता तो अकर्तापना छोड़कर कर्ता होता नहीं। विशेष अपेक्षा से वह कर्ता हुआ है, सामान्य अपेक्षा से अकर्ता रहकर।

क्या कहा यह? कि जीवतत्व सामान्य है। सभी के पास सामान्य और विशेष, दो पहलु हैं। शुरुआत में यहाँ मैं आया था तब इन सामान्य-विशेष के दो पहलुओं की बात की थी, आहाहा! शुरुआत में ही। एक सामान्य पहलु है जिसे जीवतत्व कहने में आता है। जिसे परमात्म तत्व कहने में आता है। जिसको अंतःतत्व कहते हैं। जो शुद्धात्मा उपादेय तत्व है। वह तो तीनों काल शुद्ध, शुद्ध और शुद्ध, परिपूर्ण परमात्मा है। कर्म का संबंध हुआ नहीं है। उसे राग का संबंध हुआ नहीं है। इसलिए आत्मा अकारक, अवेदक, अकर्तापने रहा हुआ है। पहले रहा हुआ था, वर्तमान में रहा हुआ है और भविष्य काल में भी रहेगा। अपने स्वरूप को छोड़ेगा नहीं। निजभाव को छोड़ता नहीं है अकर्ता को, और अकर्ता कर्ता नहीं होता है। ध्यान में रखना यह।

दो भूलों की बात चलती है। यहाँ पर दूसरे प्रकार की भूल आयेगी लेकिन पहले प्रकार की भूल का पहले स्पष्टीकरण करने में आता है। आत्मा को ज्ञाता होते हुए भी कर्ता मानता है। आत्मा ज्ञाता होते हुए भी ' रागादि को मैं करता हूँ और राग मेरा कर्म है,' वह कर्ताबुद्धि की भूल है पहली। है ज्ञाता और मानता है कर्ता। वह कर्ता मानता है तो भी वह सामान्य पहलू अकर्ता का है। उस अकर्ता को छोड़कर, ज्ञायक को छोड़कर वह राग का कर्ता नहीं होता।

त्रिकाली द्रव्य निष्क्रिय है और राग में प्रवेश नहीं करता। राग को क्यों नहीं करता? कि **'तद्रूपो न भवति',** पुण्य-पापरूप आत्मा होता नहीं। इसलिए पुण्य-पाप का आत्मा तीनों काल, एक समय मात्र भी वह कर्ता नहीं बन सकता। अकर्ता रहा है। अकर्तापना छोड़े तो कर्ता होवे लेकिन अकर्तापना छोड़ता ही नहीं है। लेकिन जो 'मैं अकर्ता ज्ञायक ज्ञाता हूँ'- ऐसे स्वभाव को भूल जाता है। प्रति समय,

और परिणाम में रागादि देखकर रागादि की क्रिया - षट्कारक परिणाम में होते हैं। क्रिया के कारक परिणाम में हैं। निष्क्रिय के कारक आत्मा में हैं। आहाहा! आत्मा तीनोंकाल निष्क्रिय क्रिया के कारण बंध-मोक्ष की क्रिया से रहित है।

वह आत्मा को भूलता है तब उसकी पर्याय में जो रागादि होते हैं। उनको ' मैं करता हूँ' ऐसी एक अज्ञानी कल्पना करता है इससे वह विशेष अपेक्षा से कदाचित् कर्ता होता है। कथंचित् नहीं। कथंचित् कहोगे तो सदा के लिए रह जायेगा और कदाचित् लोगे तो समय मात्र ही रहेगा। दूसरे समय राग का पूरा अकर्ता हो जायेगा। कथंचित् और कदाचित् में बड़ा फर्क है। आहाहा! रमेश कहाँ गया ? रमेश भैया! आहाहा! कदाचित् और कथंचित् में बड़ा फर्क है, अंतर है। आहाहा! वैसे तो ये शास्त्री और बड़े पंडित कहलाते हैं लेकिन हमारे सामने तो बालक ही हैं न? आहाहा!

क्या कहा? प्रभु! सुन। राग का कर्ता विशेष अपेक्षा से होता है। सामान्य अपेक्षा से अकर्ता रहकर विशेष अपेक्षा से कर्ता होता है। मैं कर्ता हूँ- ऐसा उसे प्रतिभासित होता है। उस अपेक्षा से, विशेष अपेक्षा से अज्ञानी कर्ता हुआ है राग का। आहाहा! कहते हैं वह भी कदाचित् है। कदाचित् अर्थात् किसी समय राग का कर्ता होता है। तीनों काल राग का कर्ता हो- ऐसा तीनोंकाल अज्ञान उत्पन्न हो ऐसा पर्याय का धरम नहीं है। द्रव्य का धर्म तो अज्ञानी होने का नहीं है।

प्रकाश, यहाँ जामनगर में तत्व के पकड़ने वाले हैं। इसलिए तो थोड़ा आकर्षण रहता है। क्या कहा? कथंचित् कर्ता है - तो- तो वह व्यवहारनय से कर्ता तीनोंकाल लागू पड़ जायेगा, लेकिन कदाचित् कर्ता है, किसी समय। कदाचित् का अर्थ किसी समय। कब तक? कि जब तक भेदज्ञान का अभाव होता है और राग को अपना मानता है तब तक एक समय लिए कदाचित् कर्ता है। दूसरे समय तो अकर्ता हो जाता है। कर्तापना पर्याय में भी राग का अनादिअनंत नहीं है। अनादिसांत है। असल में तो सादिसांत है। अनादि कहना वह भी एक प्रकार का व्यवहार है।

सादिसांत अर्थात् जिस समय स्वभाव को भूलता है और राग को अपना मानता है उस समय कदाचित् वह, उस समय ..किसी वक्त, राग का कर्ता हूँ ऐसा उसे भासित होता है। वह उसका अज्ञान है। दूसरे समय अरे! मैं तो ज्ञाता हूँ। मैं राग का कर्ता नहीं हूँ। तब एक प्रश्न होता है कि राग होता है तब (उस समय) अकर्ता हो सकता है? कि हाँ। वह किस तरह से? पर्याय में राग हो तब आत्मा अकर्ता हो जाये- वह किस प्रकार से? आहाहा! कि जब राग होता है तब दृष्टि पलट जाती है और ज्ञायक के ऊपर आती है। अकर्ता को लक्ष में लिया, कर्ताबुद्धि छूट जाती है और राग रहा करता है।

तो राग का कर्ता, परिणाम का कर्ता परिणाम है। मैं कर्ता नहीं हूँ। ऐसा भेदज्ञान होकर अनुभव हो जाता है। राग रह जाता है, कर्ताबुद्धि मिट जाती है और ज्ञायक के लक्ष से सम्यग्दृष्टि हो जाता है। अद्भुत चमत्कारिक बातें गुरुदेव कर गये हैं। यह सब गुरुदेव कह गये हैं उसका स्पष्टीकरण चलता है। कि एक तो उसकी कर्ताबुद्धि की भूल है कि मैं राग को करता हूँ। राग को करता हूँ वह भूल है। उससे आगे जाकर मैं यह दुकान का व्यापार करता हूँ और यह जमीन का व्यापार करता हूँ और मेरे पुरुषार्थ से पैसा कमाता हूँ, वह सब कल्पना है। अज्ञानता है। आहाहा! ऐसा है नहीं।

पैसा पुण्य से आता है। वह पुण्य भी निमित्त है। वरना पैसे की क्षणिक उपादान की पर्याय आने

की हो तो आता है और जाने की हो तो जाता है। जाता है तब पाप निमित्त कहलाता है और आता है तब पुण्य निमित्त कहलाता है। लेकिन निमित्त से निरपेक्ष देखो तो तत् समय की पर्याय, परमाणु की आने की हो तो आता है और जाने की हो तो जाता है। आहाहा! लेकिन जगत के जीवों को निमित्त से समझाने में आता है। वरना निमित्त से कहीं पैसा आता नहीं है। पुण्य के उदय से पैसा नहीं आता।

(शिष्य:-) यह कहाँ तक तुम्हें निकालते जाना है? कि सब कुछ घटाकर जो बचे वह आत्मा है। श्रीमद्जी ने कहा था घटाने पर जब कचरा निकल जाता है, तब जो शुद्धात्मा है वह आत्मा है। मधुभाई! ऐसा है। पुरुषार्थ से तो पैसा आता नहीं। प्रफुल्लभाई! पुरुषार्थ से तो आता नहीं लेकिन पुण्य से भी नहीं आता। उसका स्वकाल है परमाणु का, उस क्षेत्र से क्षेत्रांतर होकर दूसरे क्षेत्र में था परमाणु, इस क्षेत्र में आया उसमें तुझे क्या लाभ मिला? आहाहा!

वह तो समझाने में आता है कि पुण्य के निमित्त से होता है। उसमें पुण्य के निमित्त से होता है- ऐसा (कथन) आता है, उसमें पुण्य की कर्ताबुद्धि हो जायेगी। अतः पुण्य से निरपेक्ष परमाणु आने हों तो आते हैं और जाने हों तो जाते हैं। परमाणु को निरपेक्ष देख तू। पुण्य सापेक्ष मत देख! आहाहा! पुण्य से आवे, तो हम पुण्य करेंगे तो आयेगा पैसा- ऐसी उसमें बुद्धि हो जाती है। कहाँ गया विमल, आहाहा! वह बहुत होशियार है न! कारखाना चलाता है। आहाहा! वह तो अज्ञान है। मैं चलाता हूँ,- मानता है तो अज्ञान है। कौन चलाता है?

अरे! एक सड़े हुए तिनके के दो टुकड़े करने की शक्ति भी आत्मा में नहीं है। श्रीमद् राजचंद्रजी एकावतारी पुरुष हो गये हैं। आहाहा! यहाँ फोटो है। ये उन्होंने कहा, एक सड़ा हुआ तिनका, हों! वह पत्ता हरा होता है न उसे तो देर लगती है। और यह तो छूते ही टूट जाता है, लेकिन वह तोड़ता नहीं है। अब सड़े हुए तिनके (के दो टुकड़े) करने की शक्ति तेरे में नहीं है, पर का करने के लिए तू नपुंसक है! आहाहा! सुन न! तेरे में शक्ति नहीं है। इसे ऐसा कर दूँ और इसे ऐसा कर दूँ और उसे वैसा कर दूँ। अरे भगवान! कहाँ तू चला गया बाहर? अरे! परिणाम से बाहर गया, प्रमाण के बाहर चला गया! आहाहा!

कहते हैं कि कर्ताबुद्धि की बड़ी एक भूल है। भूत सवार हो गया है। 'मैं करूं मैं करूं वह ही अज्ञानता, शकट का भार जैसे श्वान ताने '। (आनंदघनजी) अन्यमति हो गए हैं , वे तो ईश्वर के कर्तावादी हैं। लेकिन हम तो उदाहरण लेते हैं, 'मैं करूं मैं करूं वह ही अज्ञानता, शकट का भार जैसे श्वान ताने'। गाड़ी के नीचे ऐसे चलता है कुत्ता, और जरा इसप्रकार अड़ता है ठांठे को, हं.. मैं चलाता हूँ। उस बीच उसे खुजली आई पैर में तो रुक गया। कुत्ता रुक गया। गाड़ी चलने लगी। यह क्या? यह क्या? गाड़ी तो मेरे से ही चलती थी और मैं तो खड़ा हूँ तो भी चलने लगी? आहाहा! भेदज्ञान हो गया, कर्ताबुद्धि छूट गई और कुत्ते को सम्यग्दर्शन वहाँ हो गया। आहाहा! होता है, कुत्ते को नहीं होता? संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है। आगम कहता है , पुकार करता है। चारों गति के जीवों में संज्ञी पंचेन्द्रिय हों उन्हें आत्मानुभव हो सकता है।

यह कारखाना मेरे से चलता है। ये आशीष बैठा है। आहाहा! तेरे से कहीं कारखाना नहीं चलता है। प्रभु! पीछे मुड़- पीछे मुड़, कर्ताबुद्धि से पीछे मुड़ और ज्ञाता के पक्ष में आ जा। ज्ञाता के पक्ष

में आयेगा तो ज्ञाता के दर्शन होंगे। लेकिन कर्ता के पक्ष में रुका हुआ है उसे ज्ञाता के- भगवान के दर्शन नहीं होंगे। उसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा, ऊंचे से नीचे पटके तो भी! आहाहा! बहुत दान दे और बहुत मंदिर बनवाये, व्रत करे, तप करे कर्ताबुद्धि से। आहाहा! उसका कर्ता तू तो नहीं है राग का, लेकिन अब दूसरा पाठ।

कि साहेब! मैं राग का कर्ता नहीं हूं, होने योग्य सब होता है। या तो पुण्य से होता है या होने योग्य होता है लेकिन मैं कर्ता नहीं हूँ। पर वह जब आता है (तब) उसका मैं ज्ञाता हूँ। पैसा आता है और जाता है उसका ज्ञाता हूँ और जो शुभाशुभभाव होते हैं उनका भी मैं कर्ता नहीं हूँ। मैं तो उनका ज्ञाता हूँ।- वह दूसरी भूल! प्रफुल्लभाई को ऐसा लगा कि ज्ञाता हूँ यह बात तो अच्छी लगती है उसे। होता है (ऐसा) पहले, कर्ता नहीं है तो ज्ञाता कहते हैं। ज्ञानी भी कहते हैं, उसमें क्या? हाँ! लेकिन तू उसका ज्ञाता नहीं है। कर्ता तो नहीं, आहाहा! लेकिन उसका ज्ञाता नहीं है। उसे जाननेवाला ज्ञान अलग और आत्मा को जाननेवाला ज्ञान अलग। दो ज्ञान अंदर में, ज्ञान की पर्याय एक और उसके भाग दो रहे हुए हैं अंदर में। आहाहा!

ये बात हमने यहाँ सूक्ष्म ली है, पर्युषण पर्वाधिराज के दिन हैं न? राग का करनापना तो छोड़ दे तू। वह तो होने योग्य होता है उसका कर्ता आत्मा नहीं है। तीन काल में नहीं है। अशक्य है। ऐसा पाठ है समयसार में। कि राग को करने की शक्ति, कोई गुण आत्मा में नहीं है कि राग को उत्पन्न करे। राग को उत्पन्न करे ऐसी शक्ति आत्मा में नहीं है।

जिस भाव से तीर्थंकर कर्म की प्रकृति का बंध होता है उसमें सम्यग्दृष्टि का शुभभाव निमित्त होता है। मात्र शुभभाव होता है। उस शुभभाव का कर्ता सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा नहीं है।आहाहा! वह करना आत्मा के स्वभाव में नहीं है। ऐसा कोई गुण नहीं है आत्मा में कि राग को उत्पन्न करे। राग की रचना करे, शुभाशुभ को करे और दुःख को भोगे ऐसा आत्मा का स्वभाव नहीं है। वह बात सुनी नहीं है इसलिए नहीं है? वह बात सुनी नहीं है संतों के पास से, इसलिए क्या नहीं है? वस्तु नहीं पलटती, तुझे पलटना पड़ेगा गुरुदेव कहते थे। अब कर्ताबुद्धि तो छोड़, तू अब।

और कदाचित कर्ताबुद्धि मंद पड़ गई हो तो वह दूसरा एक शिकंजा है। मोहराजा ने शिकंजा रखा, मोहराजा ने। (मोहराजा कहता है) कि कदाचित् मानो कि तुझे सोनगढ़ के संत मिल जाएं और कर्ताबुद्धि तू छोड़ दे तो कहीं तू मेरे शिकंजे में से तू छूट जाये ऐसा नहीं है। आहाहा! दूसरा तुझे पकड़कर रखे ऐसी पुलिस मैंने रखी है। आहाहा! तुझे छूटने नहीं देगी संसार में से। मेरी बस्ती घट जायेगी, मोहराजा कहता है, मेरी बस्ती घट जायेगी इसलिए कदाचित् तू कर्ता नहीं है, अकर्ता हूँ, ज्ञाता हूँ, ज्ञाता हूँ, पुण्य-पाप का ज्ञाता, विश्व का ज्ञाता, छह द्रव्य का ज्ञाता, नव तत्व का ज्ञाता। आहाहा! मोहाराजा कहता है इसमें से छटकना मुश्किल पड़ेगा तुझे। आहाहा! कोई विरला छटकेगा। छटके तो हैं , छटककर बहुत तो परमात्मा भी हो गये। छह सौ आठ जीव हर छह महीने और आठ समय में जाते हैं।

दो हजार वर्ष हुये कुंदकुंद भगवान को। पैंतीस लाख जीव सिद्ध परमात्मा हो गये दो हजार वर्ष में। उसके गुणाकार करने पर कोई पच्चीस लाख कहते हैं, कोई पैंतीस लाख कहते हैं, हम तो जो हो

वह। सिद्ध हो गये हैं! इन दो हजार वर्ष में। अरे ये पैंतीस लाख सिद्ध हो गये और तू रह गया तो तुझे अब शर्म नहीं आती? आहाहा! लेकिन वीर्य शक्ति ऐसी मुरझा गई है कर्ताबुद्धि और ज्ञाताबुद्धि में। उसके वीर्य की स्फुरणा अंदर में होती नहीं है। आहाहा! कि शुभाशुभ का कर्ता नहीं। कर्तापना गया लेकिन मैं ज्ञाता तो उसका हूँ न? शास्त्र में आता है। ज्ञानी भी कर्ता नहीं हैं लेकिन ज्ञानी भी व्यवहारनय से जाना हुआ प्रयोजनवान है, हमने पढ़ा है। समझ गये? वह मोहराजा बोलता है, आत्मा नहीं बोलता। कौन बोलता है वह?

मुमुक्षुः- मोहराजा।

उत्तरः- मैं ज्ञाता हूँ विश्व का। वह आत्मा नहीं बोलता, आत्मा ऐसा जानता भी नहीं है। वह मोहराजा, अज्ञान, वह बोलता है (कि) मैं उसका जाननेवाला हूँ। (वह) अज्ञान है तेरा आहाहा! तू ज्ञाता भी नहीं है उसका। यह सूक्ष्म बात है। दूसरा बोल है न? वह जरा सूक्ष्म है। ये दस गाथा इसलिए ली हैं। आहाहा!

अब पचास वर्ष हो गये गुरुदेव को। अब तो सूक्ष्म (कहना), कब तक स्थूल-स्थूल कहना? कल एक बेन आयी थी घर पर, आहाहा! भाई! अब तो यह सूक्ष्म बात ही हमें सुननी है। स्थूल बात अब नहीं सुननी है। बात सच है बेन! आहाहा! वह तीसरा श्लोक (गाथा) चलता है। चला था, लेकिन फिर से लेते हैं

अशुभ अथवा शुभ शब्द एक कर्तापने का भूत और एक ज्ञातापने का भूत। दो भूत चिपक गये हैं। ध्यानाविष्ट और भूताविष्ट, आता है न शास्त्र में? आहाहा! आहाहा! **अशुभ अथवा शुभ शब्द**, शब्द पुद्गल की पर्याय है। शब्द स्कन्ध की पर्याय है। **अशुभ अथवा शुभ शब्द तुझसे यह नहीं कहता**, शब्द निकलते हैं बाहर में, कोई तेरे सगे संबंधी, कोई मित्र, आहाहा! कोई तेरी टीका करनेवाले दुश्मन चाहे जैसे शब्द बोले। आहाहा! मैं शब्द सुनता ही नहीं न! आहाहा! इसलिए मुझे तो समता वर्तती है। मैं शब्द सुनूं और मुझे शब्द कहा, इसप्रकार शब्द का मैं स्वामी होऊं, तो तो मुझे राग-द्वेष हो जाएगा। लेकिन मैं सुनता ही नहीं हूं। तब सुनता है कौन? हमें सुननेवाला बताओ। तो मैं सुननेवाला नहीं हूं, यहाँ पर आ जाओ। समझ में आया?

राग का कर्ता आत्मा नहीं है, तब शिष्य ने प्रश्न किया कि राग का कर्ता कोई बताओ। तो मैं अकर्ता में आ जाऊँ, स्वीकार कर लूं। तब आचार्य भगवान कहते हैं कि राग का कर्ता पर्याय है। बताता हूँ। अब तो तू अकर्ता को स्वीकार कर ले। परिणाम का कर्ता परिणाम है। उसके षट्कारक से स्व अवसर में होता है। आत्मा उसका कर्ता (नहीं है)। क्रिया के कारक-षट्कारक उस पर्याय के पर्याय में तत् समय में हैं। कर्ता भी पर्याय, कर्म भी पर्याय, करण, संप्रदान, अपादान, अधिकरण, सभी षट्कारक अभेदरूप से एक पर्याय में हैं। अभेदरूप से एक पर्याय में हैं। भेद से समझाते हैं (कि) इसे कर्ता कहते हैं और इसे (कर्म कहते हैं)। पर्याय में कर्ता-कर्म के छह भेद हैं। अभेद से तो भेद दिखता नहीं। अभेद से तो उसमें भी छह भेद दिखते नहीं हैं।

ये तो पर्युषण के दिवस हैं न? पर्युषण अर्थात् उपासना करना, आत्मा की आराधना करना। उसका नाम पर्युषण कहने में आता है। आहाहा! (क्या) इन दस ही दिन आराधना करनी ? बाकी

विराधना करनी? ऐसा नहीं होता। आराधना करनी होती है। और अमुक उम्र में तो फिर, समझ गये? सब बड़ी उम्र के हैं न? ये भी बड़ी उम्र के हैं, दिखती है छोटी उम्र लेकिन बड़ी उम्र के हैं, अड़सठ वर्ष की उम्र। आहाहा! भाई तो पैंसठ-सत्तर के होंगे? (मुमुक्षुः- अट्ठावन) अट्ठावन बोलो! छोटे हैं। आहाहा! छोटे नहीं हैं, बड़े हो जाते हैं जल्दी। काम करो। आहाहा! आत्मा को पहचानो, बस! जो आत्मा को पहचानता है, जानता है, अनुभवता है, अल्पकाल में ये चार गति के दुःख मिट जाते हैं। क्या कहते हैं? परमात्मा की वाणी है यह हों! सीमंधर प्रभु की वाणी है। आहाहा!

सीमंधर प्रभु के मुख से फूल खिरे,

उनकी कुंदकुंद (कुंदकुंद भगवान) **गूँथें माला रे!**

आहाहा! माला गूँथी है समयसार में, भर दी है सारी वाणी। आहाहा! **शब्द तुझसे यह नहीं कहता कि 'तू मुझे सुन';** आहाहा! तब प्रश्न होता है शिष्य को कि जैसे राग का कर्ता नहीं है और आत्मा अकर्ता है, तो बताओ राग का कर्ता कौन है? तो साधक कहता है कि राग की कर्ता पर्याय है, तू कर्ता नहीं है। तो अकर्ता में आ गया। अब, इन शब्द को मैं सुनता हूँ, उन्हें जानता हूँ, तो आचार्य भगवान कहते हैं कि **शब्द तुझसे यह नहीं कहता कि 'तू मुझे सुन'; और आत्मा भी** स्वयं को जानना छोड़कर उसे जानने नहीं जाता।

नहीं? आत्मा नहीं जानता इन शब्द को? क्या बात करते हो? यह तो तद्दन अपूर्व और नयी बात लगती है मुझे। कि यह नयी ही है। यह बात तो, है तो पुरानी अनादि की, लेकिन तेरे कान पर आयी नहीं है इसलिए तुझे नयी लगती है। यह बात भी सच्ची है। काम-भोग-बंधन की कथा सुनी, लेकिन एकत्व-विभक्त आत्मा की बात तूने सुनी नहीं है। इन शब्द को सुनता नहीं है आत्मा। आहाहा! यह पढ़े- लिखों को तो लगता है कि यह क्या बात करते हैं? ओर्थोडोक्स (orthodox)? क्या कहलाता है?

मुमुक्षु :- ओर्थोडोक्स? रूढ़िग्रस्त।

उत्तर :- रूढ़िग्रस्त लगता है सभी को। भाई! यह बात अपूर्व है। कान में पड़ी नहीं है। तुझे बैठती नहीं है। तू जिनेन्द्र भगवान की वाणी का विरोध मत करना, ना मत करना। और समझे बिना हाँ भी मत करना, समझकर हाँ करना। शब्द को आत्मा नहीं सुनता। शब्द कहता नहीं कि मुझे सुन। और आत्मा स्वयं को जानना छोड़कर उसे जानने नहीं जाता।

तब शिष्य का प्रश्न हुआ कि प्रभु! शब्द को आत्मा सुनता नहीं है, तो मेरे कान पर शब्द तो आये, तो मैं सुनता नहीं हूँ, तो कोई सुननेवाला बताओ तुम? तो 'मैं सुनता नहीं हूँ किन्तु जाननहार को जानता हूँ' उसमें आ जाऊँगा। लेकिन कोई बताओ तो सही? आचार्य भगवान कहते हैं भगवान! तू शब्द को सुनता नहीं है। तब शिष्य प्रश्न करता है कि यह देशनालब्धि की गुरुदेव की वाणी मूसलधार छूटी पैंतालीस वर्ष तक, उस वाणी को आत्मा ने नहीं सुना। तब दिव्यध्वनि छूटती है न ? उसे आत्मा सुनता नहीं है, आहाहा!

गुरुदेव ने शुरुआत में जब ऐसा ऐटम बोंब (atom bomb) रखा, खलबलाहट हो जाती है न? खलबली, खलबली पूरे जगत में, आहाहा! कि पेट्रोल से मोटर चलती नहीं। वहाँ से धड़ाका किया, आहाहा! पेट्रोल से मोटर चलती नहीं और कुंभार से घड़ा होता नहीं। ऐसा कहनेवाले कोई लगते हैं,

विचक्षण। हमें उनके पास जाना चाहिये। यह किसी पागल मनुष्य की बात नहीं है। ऐसे करके जहाँ समझने के लिए आते , वहाँ उनके हो जाते। आहाहा! वे सभी न्याय से, लॉजिक से, युक्ति से समझाते थे। हम कहते हैं इसलिए तू मत मान। कि आज तक कुंभार से कोई घड़ा बना नहीं है। आज तक पेट्रोल से मोटर चलती नहीं है। और आज तक हरकिशनभाई ने कपड़े के दो टुकड़े किये नहीं हैं। ये बैठे हैं। ग्राहक आवे कि दो गज-मीटर (कपड़ा) देना। कि काटते हैं कि नहीं? आहाहा! कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के परिणाम का कर्ता तीन काल में नहीं हो सकता। अशक्य है। तेरी बुद्धि मिथ्या हो गई है।

तो साहेब! करता नहीं हूँ तो कोई बात नहीं लेकिन होता है उसे जानता तो हूँ न? टुकड़े होते हैं कपड़े के। मोटर चलती है, चलाता नहीं। किंतु चलती हुई मोटर स्वयं चलती है, इसप्रकार। मैं चलाता नहीं। चलती हुई मोटर स्वयं चलती है, ऐसा मैं जानता हूँ। वह तेरा अज्ञान है। अरे! आहाहा! यह क्या बात करते हो? यह अपूर्व बात इसमें आयी है। आनेवाली है अभी।

कि शब्द को **'तू सुनता नहीं है'।** तब शिष्य ने प्रश्न किया कि शब्द छूटते हैं वह बात सच है? कि हाँ ! सच है। उसे कोई सुननेवाला है, उस बात का आप स्वीकार करते हो? कि हाँ। स्वीकार करते हैं। तब आत्मा उसे सुनता है, ऐसा आ गया। आप कहते हो कोई सुननेवाला तो है। तो जिसमें ज्ञान हो वही सुने न? यह (लकड़ा) थोड़े ही कहीं सुनता है शब्द को? शिष्य का प्रश्न है। कि तेरा प्रश्न तो अच्छा है। तेरे प्रश्न पर कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन सुन, कौन उसे सुनता है? एक इंद्रियज्ञान परावलंबी, वह ज्ञान प्रगट होता है, अनादि का अज्ञान, इन्द्रियज्ञान इज ईक्वल टू (=) अज्ञान। वह उसे सुनता है। आत्मा उसे सुनता नहीं है और आत्मा का ज्ञान भी उसे सुनता नहीं है।

आत्मा कान बिना का है इसलिए वह कान के द्वारा सुनता नहीं। आत्मा में कान है? (मुमुक्षुः- नहीं) आहाहा! कान तो संयोगरूप से(है), वह तो पुद्गल है वह तो। वह आत्मा की चीज हो तो सिद्ध में भी कान रहना चाहिये। लेकिन कान का तो अभाव हो जाता है। वह तो पुद्गल की पर्याय है। कान के द्वारा सुनता नहीं है। ठीक है प्रभु! कान के द्वारा नहीं सुनता हो तो कोई बात नहीं, लेकिन अज्ञानी के पास ज्ञान का उघाड़ है न? उसके द्वारा सुनता है? कि क्षयोपशम भाव का उसमें अभाव है इसलिए भावेन्द्रिय के द्वारा भी, कर्णेन्द्रिय के द्वारा भी वह शब्द को सुनता नहीं है।

तब चौबीस घंटे करता क्या है वह? कि ज्ञान के द्वारा आत्मा को जानता रहता है। आत्मा-आत्मा को जाननेरूप ही परिणमता है, आबाल गोपाल सभी को भगवान आत्मा ही जानने में आया करता है। शब्द को सुनता नहीं। शब्द को सुननेवाले कान का अभाव और शब्द को जो ग्रहण करता है , इंद्रियज्ञान, भावइन्द्रिय, ग्रहण करता है अर्थात् उसे जानता है। भावेन्द्रिय का जो उघाड़ है न यहाँ, यहाँ का (कान का) वह उसको सुनता है, लेकिन मैं उसे जानता नहीं हूँ। तुझे बताया सुननेवाला। उसे जाननेवाला तुझे बता दिया कि भावेन्द्रिय उसे जानती है। लेकिन भावेन्द्रिय के द्वारा आत्मा को शब्द का ज्ञान नहीं होता। आत्मा का ज्ञान छोड़े तो शब्द का ज्ञान हो। लेकिन आत्मा तो आत्मा को जानना कभी छोड़ता नहीं है। आहाहा! अपूर्व चीज है।

उपयोग लक्षण है, उस लक्षण में निरंतर आत्मा जानने में आता है। यदि वह उपयोग आत्मा को जानना छोड़ दे तो-तो आत्मा अजीवपने को प्राप्त हो। अजीव तो होता नहीं। और इंद्रियज्ञान अनादि

का अज्ञान से उत्पन्न हुआ भाव है, वह शब्द को जानता है तो जाने लेकिन मैं शब्द को नहीं जानता। शब्द से भिन्न, शब्द को जाननेवाली भावेन्द्रिय से भी भिन्न, मैं तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय आत्मा हूँ। अपने उपयोग के द्वारा अपने आत्मा को जानता हूँ। आहाहा! इंद्रियज्ञान को नहीं जानता और इन्द्रियज्ञान के विषय को भी नहीं जानता।

यह क्या? कहाँ की बात करते हो? सिद्ध अवस्था की बात करते हो या अरिहंत दशा होती है उसकी बात करते हो? आहाहा! उनको भावेन्द्रिय का अभाव है, अरिहंत को। वह तो ठीक ही है। लेकिन यहाँ तो भावेन्द्रिय का सद्भाव है। लेकिन भावेन्द्रिय उसे जानती है न? भावेन्द्रिय और अतीन्द्रियज्ञानमय आत्मा, उन दो के बीच अत्यंत अभाव है। आहाहा! भावेन्द्रिय जाने तो जानो। उसके ऊपर छोड़ दे न, भावेन्द्रिय के ऊपर। ज्ञान को कह न तू, कि मैं तो मुझे जाना करता हूँ। आहाहा!

मैं मुझे जानना छोड़कर भावेन्द्रिय के खंडज्ञान द्वारा मैं शब्द को जानने नहीं जाता, अतः जानता ही नहीं। और ऐसा माने कि मैं अपने ज्ञान के द्वारा शब्द को जानता हूँ, उसने भावेन्द्रिय और आत्मा को एक किया। संपूर्ण विश्व की एकता हो गई। आहाहा! शब्द के साथ एकता हो गई। कान के साथ एकता, शब्द के साथ एकता और भावेन्द्रिय के साथ एकत्वबुद्धि करके बैठा है। यह विभक्त करने का पाठ है। आहाहा! कहते हैं कि शब्द नहीं कहता कि **'तू मुझे सुन'।** मुफ्त में तू अपने हाथों ही दुःखी होता है, प्रभु!

मुमुक्षुः- पंचकल्याणक के समय आपके प्रवचन में था।

उत्तरः- था न वहाँ? हाँ, वह तो आता है, भेदज्ञान तो आता ही रहता है। दो ही बातें हैं। कर्ताबुद्धि छोड़ और ज्ञाताबुद्धि छोड़। लेकिन कर्ताबुद्धि का विशेष चलता है जनरल समाज में, लेकिन ज्ञाताबुद्धि छोड़ने के पाठ थोड़े हैं, शास्त्र में भी कम हैं। पर हैं जरूर। आहाहा!

तुझे ऐसा नहीं कहते कि 'तू मुझे सुन'; और उस तरफ से बात करी। अब इस तरफ से बात करते हैं, आचार्य महाराज। **और आत्मा भी,** यह सभी आत्मा की बात चल रही है, अरिहंत-सिद्ध की बात नहीं है। सभी आत्मा का स्वभाव आत्मा को जानने का है और पर को जानने का नहीं, नहीं और नहीं है। तब कौन पर को जानता है? कि वह दूसरा ज्ञान, दूसरा दूसरे को जानता है। मैं मुझे जानता हूँ। दूसरा (दूसरे को जानता है)। दो विभाग कर दे न, अतीन्द्रियज्ञान और इन्द्रियज्ञान के बीच में। अरे! तेरा काम हो जायेगा।

इन्द्रियज्ञान में अहम् बुद्धि की है, कर्ताबुद्धि की है। या राग मेरा और या ज्ञान मेरा। आहाहा! वह ज्ञान नहीं है किन्तु ज्ञेय है। मोहराजा ने उसका नाम कहा ज्ञान और सर्वज्ञ भगवान ने उसका नाम कहा ज्ञेय। आहाहा! उस ज्ञेय को ज्ञान मानना अज्ञान है। ज्ञेय को ज्ञान मानना अज्ञान है। और ज्ञान को ज्ञान जानना वह सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! अच्छे दिवस हैं न ये?

मुमुक्षुः- फुल सीजन है।

उत्तरः- शादी के दिन हैं न ये तो? 'शिवरमणी रमनार तू, तू ही देव का देव'। आहाहा! सभी को धर्म करना है न? यह धर्म की वार्ता चलती है। आहाहा! मैं पर को जानता हूँ वह कर्म है, धर्म नहीं।

मुमुक्षुः- अपूर्व तरीके से आ गया है।

उत्तर:- अपूर्व। भेदज्ञान, इन्द्रियज्ञान और आत्मज्ञान के बीच भेदज्ञान चलता है।

मुमुक्षुः- अखंड?

उत्तर:- एकदम अखंड। **और आत्मा भी**, वह (शब्द) तो नहीं कहता कि तू मुझे जान। **और आत्मा भी**, यहाँ से लिया अब। पहले निमित्त से बात की। फिर उपादान से बात करते हैं। कि उपादान में क्या शक्ति है? कि उपादान में पर को जानने की शक्ति नहीं है? कि नहीं है। तो फिर उपादान में क्या शक्ति है? आत्मा को जानने की शक्ति है, पर को जानने की शक्ति नहीं है। राग को करने की शक्ति नहीं है ऐसे पर को जानने की शक्ति आत्मा में नहीं है। फिर आ जा अंदर। आहाहा!

तब व्यवहार से जानता है-व्यवहार से जानता है-व्यवहार से जानता है, वह तो बहुत आयेगा। अर्थात् क्या? व्यवहार से जानता है, अर्थात्? कौन जानता है? स्पष्टीकरण करो। थैले में पाँच किलो का बाँट नहीं चलेगा अब। थैले में पाँच किलो रुई,... एक घटना बनी। एक भाई को किसी से जरा दुश्मनी होगी, उसने खाली थैले में एक पाँच किलो का बाँट डाला। पाँच किलो का बाँट अर्थात्? वजन लोहे का। तोलने का होता है न? आहाहा! अनाज को तोलने का बाँट तोला-तोला। थैले में डाला और लगा मारने। वह दूसरा व्यक्ति चिल्लाने लगा कि मारता है, मुझे मारता है, मारता है। आसपास वाले लोग (बोले)- क्यों अब मजाक करते हो? वह तो बिचारा थैला ही तुझे मारता है, उसमें कहाँ तुझे लग गया है? अरे भाई! रहने दो। तुम देखो तो जरा, थैले में कुछ है। कि कोई भला मनुष्य होगा कि जो चिल्लाता है। देखें तो सही कि थैले में कुछ है? और खोला तो पाँच किलो का बाँट (निकला)। कमर टूट गई मेरी, आहाहा! भाई!

ऐसे ही, आत्मा पर को जानता है, जाना हुआ प्रयोजनवान है, जाना हुआ प्रयोजनवान है। कौन जानता है, लेकिन ? यह तो नक्की कर। आत्मज्ञान जानता है या इन्द्रियज्ञान जानता है?

मुमुक्षुः- इन्द्रियज्ञान जानता है।

उत्तर:- आहाहा! परसन्मुख हुआ ज्ञान पर को जानता है या स्वसन्मुख हुआ ज्ञान पर को जानता है? स्वसन्मुख ज्ञान स्व को जानता है और परसन्मुख ज्ञान (पर को जानता है)। दो विभाग हैं देखो। आहाहा! कोई तो होते हैं न पकड़नेवाले तो (होते ही हैं) आहाहा! कहते हैं प्रभु! यह बात अपूर्व है। भाव आ गया है, समयसार पूर्ण होते-होते, ३८२ गाथा, आहाहा! ४१५ पर तो पूर्ण होता है। लेकिन एक बात रह जाती थी, उनके ख्याल में आया कि इन्द्रियज्ञान को ज्ञान मानता है, जगत ज्ञेय को ज्ञान मानता है। आहाहा! अतः ज्ञान का उदय नहीं होता, उदय अर्थात् प्रगट नहीं होता, अस्त रहता है। इन्द्रियज्ञान को ज्ञान मानता है तब तक आत्मज्ञान उदय नहीं होता। आहाहा!

पुण्य से धर्म होता है और राग को करना वह तो अब स्थूल में गया। यह तो सूक्ष्म चलता है। वहाँ पर आज बहन से बात हुई, मैंने कहा कि अब हमें सूक्ष्म (विषय) लेना है। अब हमारी उम्र हो गई, कब जाना हो, न हो। अब- अब जा रहे हैं तो ये दस गाथा ले लेते हैं। आहाहा!

कि प्रभु! बहिर्मुख ज्ञान पर को जानता है। अंतर्मुख ज्ञान आत्मा को जानता है। दो भाग हैं! आहाहा! **भिन्न-भिन्न ज्ञानों से उपलब्ध होने के कारण शरीर और आत्मा का सदा परस्पर भेद है** और इन्द्रियज्ञान शरीरादि को जानता है और स्वसंवेदन ज्ञान आत्मा को जानता है। दो भाग हैं,

इन्द्रियज्ञान ज्ञान नहीं है, इन्द्रियज्ञान ज्ञेय है, हेय है। आकुलता को उत्पन्न करनेवाला है। कर्मबंध का कार्य है और कर्मबंध का कारण है। पौद्गलिक है, आत्मीय नहीं है। आहाहा! सभी शास्त्रों में यह पाठ है। हों! आहाहा! बड़ी भ्रांति हो गई।

मोक्षमार्गप्रकाशक की रचना की टोडरमलजी साहब ने, तब एक बार स्वयं फरमाते हैं कि, कि द्रव्यलिंगी मुनि, दिगंबर का मुनि! आहाहा! राजपाट छोड़कर जंगल में अठ्ठाईस मूलगुण निरतिचारपने पालते हैं। और केवल आत्महित के लिए निकले हैं। दूसरी कोई आकांक्षा नहीं है। अब सम्यग्ज्ञान प्रगट कैसे हो उसके लिए स्वयं अभ्यास करते हैं। अभ्यास करते-करते सम्यकज्ञान के लिए अभ्यास करते-करते यहाँ तक आये। कि छह द्रव्य को जो जाननेवाला है न वह मैं हूँ। छह द्रव्यों को जो जानता है वह ज्ञान मेरा है। टोडरमल साहब लिखते हैं कि यह द्रव्यलिंगी की भूल है। अब द्रव्यलिंगी मुनि भूलते हैं तो साधारण जीव तो भूल ही जायें। लेकिन साधारण जीव पा जाते हैं और द्रव्यलिंगी मुनि रह जाते हैं।

स्वतंत्र हैं सभी आत्मा। उसमें क्या है? आहाहा! लेकिन द्रव्यलिंगी मुनि ने क्या विशेष किया, मुझे तो कुछ पता नहीं चलता। क्या विशेष किया? कुछ नहीं किया। जहाँ है वहीं है। पंच परावर्तन के मध्य में रहा हुआ है वह। मिथ्यात्व का सेवन करता है, आत्मा का सेवन नहीं करता। एक समय भी ज्ञान का सेवन नहीं करता। नहीं तो भावलिंगी हो जाये। आहाहा! त्रंबकभाई! डोलते हैं पीछे बैठ हुये हों! त्रंबकभाई डोलते हैं, ऐसे-ऐसे करते हैं पैर में, खुश होते हैं। ये तो खुशी के दिन हैं न? ये कोई रोने के दिन नहीं हैं। वे रोने के दिन गये, अब सुखी होने के दिन आये हैं। खुश हो,खुश हो, तेरी आत्मा की बात संत तुझे सुनाते हैं। छूटने की बात तुझे सुनाते हैं।

भावबंध का अभाव होकर भावमोक्ष हो जाये ऐसी बात करते हैं। घड़ी आगे है, नहीं तो (पूरा कर देते), लेकिन मेरी घड़ी पीछे है इसलिए दो-तीन मिनट और चलाता हूँ। कल यह गाथा पूरी नहीं हुई और आज भी नहीं हुई। आहाहा! अमृत के कलश गाथायें हैं। अमृत, हों! अमृत भरा है एक-एक गाथा में। आहाहा! अज्ञान और मिथ्यात्व का नाश हो जाये, आहाहा! ऐसे उपाय इसमें बताते गये हैं।

आत्मा भी (अपने स्थान से छूटकर), अर्थात् अपने को जानना छोड़कर। उपयोग से आत्मा अनन्य है इसलिए उपयोग में आत्मा जनाया करता है। उस उपयोग में आत्मा को जानने के बदले वह पर को जानने जाये उपयोग, वह उपयोग का स्वभाव नहीं है। आत्मा को जानना छोड़ता नहीं और पर को जानने जाता नहीं। आहाहा! उसका ज्ञेय तो एक ही है, ज्ञायक। उपयोग का ज्ञेय तो अकेला सामान्य है। जो सामान्य का विषय है, वह ही विशेष का सामान्य है। जो सामान्य का विशेष है उपयोग, उस ही विशेष का विषय सामान्य है, दूसरा पदार्थ नहीं है। ऐसा जानकर तू जाननहार को जान ले और जाननहार जानने में आता है उस पक्ष में आजा। अरे! ज्ञाता के पक्ष में आ जायेगा तो तुझे ज्ञाता के दर्शन होंगे कि मैं तो जाननहार हूँ और जाननहार जानने में आता है। टाइम हो गया।

मुमुक्षुः- (सर्व)विशुद्धज्ञान।

उत्तरः- सर्वविशुद्धज्ञान अंतमे, अंतिम बात अब कहेते जाते है। आहाहा! कुंदकुंद भगवानकी वाणी माने समाप्त! अफर!